

## भारत में बेरोजगारी के स्वरूप व प्रकार

डॉ पार्थसारथी पाण्डेय

अर्थशास्त्र- विभाग

का0 सु0 साकेत पी0 जी0 कालेज अयोध्या 2020

ईमेल :- drps.pan@gmail.com

भारत एक अल्पविकसित , किन्तु विकासशील देश है। यहाँ बेरोजगारी का स्वरूप औद्योगिक दृष्टि से उन्नत देशों की अपेक्षा भिन्न है। लार्ड कीन्स के अनुसार विकसित देशों में बेरोजगारी का मूल कारण प्रभावपूर्ण-माँग की कमी (Lack of effective demand) माना जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि ऐसी अर्थव्यवस्थाओं में उद्योगों के उत्पादों की माँग कम हो जाने के कारण उनमें नियोजित श्रमिकों की माँग भी कम होने लगती है परिणामतः कल-कारखानें बन्द होने लगते हैं। इस प्रकार उत्पन्न बेरोजगारी को दूर करने के लिए कीन्स ने इस बात पर बल दिया था कि देश में प्रभावपूर्ण-माँग को पर्याप्त स्तर पर उँचा रखा जाय। भारत जैसे विकासशील देश में बेरोजगारी के कारणों में प्रभावपूर्ण माँग की कमी के साथ-साथ दूसरे कारण भी महत्वपूर्ण हैं। यहाँ बेरोजगारी के साथ-साथ मुद्रा-स्फीति के स्थिति की समस्या भी इसके पृष्ठभूमि में व्याप्त है।

भारत वर्ष में बेरोजगारी की परिभाषा और पहचान समय-समय पर बदलती रही है। यह परिवर्तन विभिन्ना अभिकरणों द्वारा सम्पादित अध्ययनों के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुए हैं। इन अध्ययनों के अन्तर्गत देश में विद्यमान बेरोजगारी की व्यापकता का अनुमान लगाया गया है। देश में रोजगार और बेरोजगारी सम्बन्धी सूचनाएँ पहली बार अखिल भारतीय स्तर पर मई और नवम्बर 1955 के बीच में NSS के नवें दौर में एकत्र की गयी। NSS ने रोजगार और बेरोजगारी सम्बन्धी आँकड़ें एकत्र करने के लिए विभिन्न मापदण्डों का प्रयोग किया। उदाहरणार्थ- 6ठें, 11वें, 12वें और 13वें दौर में व्यक्तियों द्वारा कुछ लाभप्रद रोजगार प्राप्त करना और 14वें और 15वें दौर में कम से कम एक दिन का कार्य भी रोजगार की श्रेणी में मान लिया गया। एक व्यक्ति, जो संदर्भित समय में बिना किसी लाभप्रद रोजगार के हो और वह संदर्भ काल

- असिस्टेंट प्रोफेसर अर्थशास्त्र का0 सु0 साकेत पी0 जी0 कालेज अयोध्या उ0प्र0

में कामके लिए उपलब्ध था (11वे 12,13वें दौर में) या संदर्भ काल के किन्हीं सात दिनों मेंउसे काम नहीं मिला , बेरोजगार माना गया। NSS. के 18वें और उसके बाद के दौरोंमें वे व्यक्ति जो काम की तलाश में नहीं थे ,लेकिन काम के लिए उपलब्ध थे , उन्हेंउस सूची से अलग कर दिया गया और आयु सम्बन्धी प्रतिबंध लागू कर दिये गये।

भारतवर्ष में बेरोजगारी की प्रकृति और उसकी आँकलन पद्धतियों में इतनी भिन्नरताथी कि इस सन्दर्भ में कोई निश्चित अनुमान लगाना कठिन था। उदाहरणार्थ रोजगारकार्यालयों के पंजीकरण रजिस्टर में जो आँकड़ें थे उनमें वे लोग शामिल नहीं किये गयेजो बेरोजगार थे। अपितु अधिकांशतया ऐसे लोग थे जिन्होंने अपने नाम दर्ज तो करायेलेकिन विभिन्नत कारणों से उनका नवीनीकरण नहीं कराया। शहर आधारित होने केकारण रोजगार दफ्तर सामान्यतः उन ग्रामीण व्यक्तियों को अपनी सूची में नहीं रखसके जो रोजगार अवसरों की तलाश में थे। इसी प्रकार आंकड़ों के अनुसार ऐसे भीव्यक्ति पंजीकृत थे जो रोजगार अवसर पाने में समर्थ तो हुए लेकिन उन्होंने इसकीसूचना रोजगार कार्यालयों को नहीं दी। निश्चित रूप से ये आंकड़ें केवल नाम-मात्र केथे और देश में बेरोजगारों की संख्या उससे कहीं अधिक थी, जितने लोग पंजीकृतबेरोजगार के रूप में रजिस्टर में दर्ज थे।<sup>2</sup>

### तालिका 2.1

#### प्रमुख राज्यों में बेरोजगारी की दरें

| अवधि      | ग्रामीण क्षेत्र | शहरी क्षेत्र |
|-----------|-----------------|--------------|
| 1977-78   | 7.7             | 10.3         |
| 1983      | 7.9             | 9.5          |
| 1987-88   | 5.3             | 9.4          |
| 1993-94   | 5.6             | 7.4          |
| 1999-2000 | 7.2             | 7.7          |

|         |      |      |
|---------|------|------|
| 2004-05 | 8.28 | 8.28 |
| 2009-05 | 8.28 | 8.28 |
| 2011-12 | 5.7  | 5.5  |

### स्रोत :- नेशनल सैम्पैल सर्वे आर्गेनाईजेशन

तालिका 2.1 से स्पष्ट है कि प्रारम्भिक रूप में बेरोजगारी के दरें शहरी क्षेत्रों में ग्रामीण क्षेत्रों के अपेक्षा ऊँची रही है | 1993 - 94 के पश्चात उदारीकरण के काल में ग्रामीण बेरोजगारी की वृद्धि दर फिर बढ़ कर 7.2 प्रतिशत हो गयी जबकि शहरी बेरोजगारी की डॉ 1993-94 और 1999 से 2000 के दौरान थोड़ी बढ़कर 7.7 प्रतिशत हो गयी | शहरी क्षेत्रों में बेरोजगारी की दरों के उच्च स्तरों की व्याख्या संघठित क्षेत्रों में बेरोजगारी की दरों के ऊँचे अनुपात के रूप में की जा सकती है | जो लोगों कि या तो बेरोजगार है प्राप्त या बेरोजगार रहने पर मजबूर करता है क्योंकि निम्न उत्पाहित क्षेत्रों में 1993 -94 तक बेरोजगारी करता है की दरों में धीरे - धीरे और लगातार गिरावट आई परन्तु 2004 -05 में इसमे वृशी का कारण विकास प्रक्रिया के दौरान शहरी क्षेत्रों की ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है |

हालाँकि NSSO के 66 वे और 68 वे शहरी और ग्रामीण बेरोजगार को क्रमशः 5.5 प्रतिशत बताया गया है वास्तव में यह कमी रोजगार के अवसर बढ़ने की कारण नही बल्कि शिक्षा के विरगार के कारण श्रमबल में वृद्धि के स्थगन के कारण है | NSSO के अनुसार श्रम शक्ति में आने योग्य आयु वर्ग में शिक्षा ग्रहण कर रहे लोगों में पर्याप्त वृद्धि होना है |<sup>3</sup>

भारतवर्ष में व्याप्त बेरोजगारी और उसकी संरचना का विश्लेषण नगरीय औरग्रामीण क्षेत्र में व्याप्त बेरोजगारी के आधार पर किया जा सकता है। नगरीय क्षेत्रों के बेरोजगारी की प्रकृति प्रत्यक्ष बेरोजगारी की है। इस कोटि की

बेरोजगारी जहाँ व्यक्तिगतरूप से कष्टप्रद और हेय समझी जाती है , वहीं इससे सामाजिक स्तर पर कई प्रकारके तनाव उत्पन्न होते हैं जिनसे अन्ततः सामाजिक व्यवस्था को खतरा हो जाता है। इस तथ्य के बावजूद संपूर्ण योजनावधि के लिए शहरों में बेरोजगारी के परिणात्मक अनुमान लगाने की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया। सत्तर और अस्सी के दशकोंके लिए राष्ट्रीय सैम्पिल सर्वेक्षण संगठन ने विभिन्नर समय बिन्दुओं पर शहरी क्षेत्र में बेरोजगारों की संख्या के अनुमान लगाए हैं। इन आंकड़ों के माध्यम से शहरी क्षेत्रों में बेरोजगारी की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन नहीं किया जा सकता क्योंकि सर्वेक्षणोंके विभिन्न दौरों में अपनायी गयी अवधारणाएं तथा आँकड़ों के स्त्रोत अलग-अलग हैं। फिर भी इन अनुमानों के आधार पर नगरीय क्षेत्र में बेरोजगारी की समस्या का स्पष्ट अनुमान लगाया जा सकता है। तालिका- 2.2 से यह तथ्य बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है।

## तालिका - 2.2

### भारतवर्ष में नगरीय क्षेत्र में बेरोजगारी

| स्रोत                             | स्रोत     | शहरी क्षेत्र में बेरोजगारी दर |
|-----------------------------------|-----------|-------------------------------|
| राष्ट्रीय सैम्पिल सर्वेक्षण संगठन |           |                               |
| (27वाँ दौर)                       | @ 1972-73 | 8.99%                         |
| (32वाँ दौर)                       | @ 1977-78 | 10.34%                        |
| (38वाँ दौर)                       | @ 1983    | 9.52%                         |
| (49वाँ दौर)                       | @ 1992-93 | 13.36%                        |

## स्रोत : नेशनल सैंपल सर्वे आर्गेनाइजेशन (27वाँ) दौर

तालिका में प्रस्तुत किये गए NSSO के 27वे दौर में प्राप्त आंकड़ों के आधार पर 1972-73 में शहरी क्षेत्र में बेरोजगारी की दर 8.99 प्रतिशत थी जो सम्भवतः पिछले 40 वर्षों में सबसे कम है। यह अनुमान अविश्वसनीय लगता है, क्योंकि 1972-73 औद्योगिक गतिहीनता की अवधि वाला वर्ष था। इसके बाद शहरी बेरोजगारी की दर थोड़ा ऊपर उठी और 1977-78 में 10.34 प्रतिशत हो गई। परन्तु 1992-93 में पुनः शहरी बेरोजगारी दर घटकर 13.36 प्रतिशत के नीचे हो गई। प्रमुख बात यह है कि इस अवधि में उद्योग, बिजली, गैस, जल-आपूर्ति, परिवहन, संचार और सेवा क्षेत्रों में रोजगार लोच (Employment elasticity) तीव्रता से कम हुई, फिर भी शहरी बेरोजगारी दर ऊपर उठने के बजाय नीची हुई।<sup>4</sup>

किसी भी विकासशील अर्थव्यवस्था वाले देश में सामाजिक आर्थिक और तकनीकी विकास के परिणामस्वरूप उद्योगों का विस्तार होता है मगर कुछ उद्योग धीरे-धीरे संकुचित हो जाते हैं। यदि भौगोलिक और तकनीकी दृष्टि से श्रम पूर्णतः गतिशील हो तो संकुचित होने वाले उद्योगों के श्रमिक नये उद्योगों में समाहित किये जा सकते हैं, परन्तु वास्तव में श्रम इन दृष्टियों से पूर्णतः गतिशील नहीं हो तो, परिणामतः बेरोजगारी उत्पन्न होती है। औद्योगिक क्षेत्र में इस प्रकार के संरचनात्मक परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होने वाली बेरोजगारी को औद्योगिक बेरोजगारी कहा जाता है<sup>5</sup> भारत वर्ष में औद्योगिक बेरोजगारी की प्रकृति और आकार क्या है? इस सम्बन्ध में पर्याप्त आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। आयोजनकाल में औद्योगिक क्षेत्र का विस्तार हुआ है। यहाँ स्तरित रोजगार का लगभग 6.5 प्रतिशत संगठित क्षेत्रों में है। यह एक संतोषजनक स्थिति प्रतीत होती है। परन्तु यह भी स्पष्ट है कि पिछले 50 वर्षों में निरपेक्ष रूप से औद्योगिक बेरोजगारी बढ़ी है। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि इस अवधि में आर्थिक-दृष्टि से सक्रिय जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हुई है जबकि आर्थिक विकास की दर उपयुक्त मात्रा में रोजगार के अवसर पैदा करने में असमर्थ रही है। दूसरे, ग्रामीण जनसंख्या की तुलना में औद्योगिक दृष्टि से दक्ष

शहरी जनसंख्या तेजी से बढ़ी है और ग्रामीण क्षेत्रों से लोगोका शहरी क्षेत्रों में पलायन भी हुआ है। स्वतन्त्रता के बाद देश में औद्योगिक विकासकी दर कम रही है। फलतः शहरी क्षेत्रों में रोजगार के अवसर भी अपेक्षाकृत कमबढ़े हैं। कृषि क्षेत्र में बड़े पैमाने पर प्रछन्नम बेरोजगारी व्याप्त है। कुटीर और लघु उद्योगोंकी उपेक्षा से ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी की स्थिति और जटिल हुई है। कृषि क्षेत्र सेशहरों की ओर पलायन की इस बढ़ रही प्रवृत्ति और औद्योगिक क्षेत्र के रोजगारअवशोषण क्षमता की सीमितता के कारण निःसंदेह असंतुलन की स्थिति पैदा हो गईहै।

देश की धीमी औद्योगीकरण के कारण भी औद्योगिक बेरोजगारी बढ़ी है। आँकड़ेंइस तथ्य को सिद्ध करते हैं कि 965 से 980 के बीच डेढ़ दशक में , देश केऔद्योगिक क्षेत्र में , गतिहीनता की स्थिति पैदा हो गयी थी / ग्यापि नौकें दशक में औद्योगिकसंवृद्धि दर में वृद्धि हुई, तथापि औद्योगिक विकास का ढाँचा ऐसा था कि रोजगार केअवसरों में अधिक वृद्धि नहीं हो पायी। परिणामतः औद्योगिक बेरोजगारों की संख्या मेंआशातीत वृद्धि हुई। इसके अलावा , कुछ गिने-चुने शहरों में उद्योगों के संकेद्रण केकारण भी बेरोजगारों की संख्या बढ़ गयी।<sup>6</sup>

भारत में शिक्षित बेरोजगारी मुख्यतया शहरी बेरोजगारी का ही अंश है। यहएक अत्यन्त गम्भीर समस्या बन चुकी है। आज शिक्षित बेरोजगारों की संख्या केसम्बन्ध में अनुमान लगाना अत्यन्त कठिन है क्योंकि इसके विश्लेषण के लिए आवश्यकआधार मौजूद नहीं है , फिर भी जो कुछ तथ्य उपलब्ध है , उनके आधार पर समस्याके विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला जा सकता है। देश के श्रम तथा रोजगार मंत्रालयके अनुसार जहाँ 1951 में 2 लाख 44 हजार शिक्षित बेरोजगार थे, वहाँ 1966 मेंइनकी संख्या 9 लाख 20 हजार थी। योजना आयोग के अनुमानों के अनुसार 1980के आरम्भ में लगभग 34 लाख 72 हजार शिक्षित बेरोजगार थे। छठी पंचवर्षीय योजनाके आँकड़ों के आधार पर 1985 में शिक्षित बेरोजगारों की संख्या अनुमानतः 47 लाखऔर 1992 में 62 लाख थी। यद्यपि श्रम तथा रोजगार मंत्रालय तथा योजना आयोग

के आँकड़ें परस्पर तुलनीय नहीं हैं परन्तु उनसे यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि 1951 से आठवीं योजना के प्रारम्भ अर्थात् 1992 तक 41 वर्षों के दौरान शिक्षित बेरोजगारोंकी संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है।

सातवीं पंचवर्षीय योजना के अनुसार , 1985 के आरम्भ में 26 प्रतिशत शिक्षितबेरोजगार स्नातक तथा व्यवसायिक शिक्षा प्राप्त थे। अर्थात् 74 प्रतिशत बेरोजगार मैट्रिकया उससे अधिक शिक्षा प्राप्त थे। यह एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है। भारत में मैट्रिक पासयुवक व्यवसायिक रूप से प्रशिक्षण प्राप्त

(Vocationaly trained) नहीं है। इसलिए वे कुशलकार्य करने के लिए सक्षम नहीं होते और अपने रोजगार के अवसरों को बढ़ाने की दृष्टिसे उच्च शिक्षा प्राप्त करते हैं। यही कारण है कि रोजगार के छोटे अवसरों के लिए भीस्नातक या उससे की अधिक शिक्षा प्राप्त युवक संघर्ष करते नजर आते हैं।

भारत में शिक्षित बेरोजगारी के अनेक कारण हैं। इनमें दोषपूर्ण शिक्षा व्यवस्था,रोजगार तलाश करने वालों में तकनीकी प्रशिक्षण तथा आवश्यक योग्यता की कमी तथाशिक्षित लोगों की मांग व पूर्ति में असन्तुलन , इत्यादि कुछ प्रमुख कारण हैं। परन्तु शिक्षितबेरोजगारी का मूल कारण भी वही है जो देश में सामान्य बेरोजगारी का मूल कारण हैऔर वह है आर्थिक विकास की धीमी गति। विकास की वर्तमान दर सभी शिक्षित लोगोंको रोजगार प्रदान करने में असमर्थ रही है। ब्लाग , लेपर्ड तथा वुडहाल के अनुसार ,शिक्षित श्रम की पूर्ति हमेशा मांग की तुलना में अधिक तेजी से बढ़ती रही है। इसलिएशिक्षित श्रम-शक्ति के अनुपात के रूप में शिक्षित बेरोजगारों की संख्या सापेक्षिक रूपसे स्थिर रही है।<sup>7</sup> इसका प्रमुख कारण यह है कि शिक्षा की निजी लागत और उसकेअनुमानित प्रतिफल के बीच व्यापक अन्तर है। भारत में उच्च शिक्षा की निजी लागत,उसके अनुमानित प्रतिफल की तुलना में , अत्यन्त कम है। इसलिए आवश्यकता सेअधिक लोग उच्च शिक्षा प्राप्त करके स्वरोजगार अवसरों को वृद्धि के प्रयासों में लगेरहते हैं। परन्तु ऐसा करते समय वे अल्प-शिक्षित लोगों के लिए समस्या उत्पन्न करदेते हैं। क्योंकि उनकी इस स्पर्धा के कारण अल्प शिक्षित लोगों को रोजगार प्राप्त करनेमें अधिक कठिनाई होती है और सरकार



की विश्वसनीयता भी संदिग्ध हो जाती है। शिक्षित बेरोजगारी की यह समस्या निःसंदेह विकट है, क्योंकि शिक्षण संस्थानों से प्रतिवर्ष बढ़ी संख्या में डिग्रीधारक निकलते हैं और उनकी रोजगार समस्या का समुचित समाधान नहीं है। रोजगार संवर्धन के लिए एशियन क्षेत्रीय रोजगार प्रेरक टीम (ARTEP) द्वारा आयोजित एशियन रोजगार नियोजकों की बैठक, जो नई दिल्ली में 24 नवम्बर 1987 को हुई थी, उसमें भी शिक्षित युवाओं के बेरोजगारी की स्थिति पर गहरी चिन्ता प्रकट की गयी और इस बैठक में औद्योगिकीय-उन्नयन, आधुनिकीकरण और उत्पादविविधता, आदि पर (विशेष रूप से लघु और ग्रामीण क्षेत्र के अन्तर्गत) विशेष बल दिया गया ताकि रोजगार के अवसरों में अपेक्षित वृद्धि हो सके।<sup>8</sup> निष्कर्षवया यह कहा जा सकता है कि शिक्षित बेरोजगारी की समस्या इस समय बेरोजगारी की सबसे जटिल समस्या बन चुकी है। चूँकि शिक्षित बेरोजगार समाज के बौद्धिकवर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, अतः इनकी हताशा और असंतोष से न केवल राजनीतिक अस्थिरता पैदा होती है अपितु उनमें निराशा का वातावरण भी पैदा होता है।

भारत वर्ष में बेरोजगारी का संकेक्षण ग्रामीण क्षेत्रों में भी है। मगर बेरोजगारी की प्रकृति और संरचना में पर्याप्त भिन्नगता विद्यमान है। ग्रामीण बेरोजगारी के अन्तर्गत मौसमी बेरोजगारी एक महत्वपूर्ण स्थिति है। इसके अन्तर्गत वे बेरोजगार होते हैं जिन्हें वर्ष के कुछ माह ही काम मिलता है जबकि वर्ष के अधिकांश दिनों में वे बेरोजगार होते हैं। भारत वर्ष के कृषि-क्षेत्र में सामान्यतः 7 से 8 माह कृषि कार्य चलता है तथा शेष समयावधि में बेरोजगारी की स्थिति होती है।<sup>9</sup> इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों में मौसमी बेरोजगारी एक सामान्य दशा है। कृषि क्षेत्र में संलग्न खेतिहर मजदूरों के पास भी प्रायः वर्ष भर रोजगार नहीं होता। पहली और दूसरी कृषि श्रम जाँच समितियों के अनुसार इनके पास 1950-51 और 1956-57 में क्रमशः 275 और 237 दिन काम था। इस प्रकार जहाँ 1950-5 में औसतन कृषि मजदूर 90 दिन बेरोजगार था, वहाँ 1956-57 में उसकी बेरोजगारी की अवधि 28 दिन थी। इसके बाद के वर्षों में भी मौसमी बेरोजगारी में वृद्धि हुई है। योजना आयोग ने चौथी पंचवर्षीय योजना का



मध्यावधि मूल्यांकन करते हुए लिखा है कि केवलहरित क्रान्ति आच्छादित क्षेत्र को छोड़कर अन्य सभी प्रदेशों में मौसमी बेरोजगारी का स्तरपूर्ववत अथवा उससे अधिक ही था।<sup>10</sup> वर्तमान समय में इस बात के प्रमाण है कि कृषिमें राष्ट्रीय आय के प्रति रोजगार लोच में भारी कमी हुई है। इसका अभिप्राय यह है कि आठवें और नवें दशक में कृषि क्षेत्र में मौसमी बेरोजगारी बढ़ी है।

प्रो० नक्रस तथा आथेर लुइस ने प्रच्छन्नह(अदृश्य) बेरोजगारी की अवधारणा को विकास के संदर्भ में प्रयोग किया। वे कृषि प्रधान देशों में खेती सम्बन्धी इस तथ्य को महत्वपूर्ण मानते हैं कि वहाँ पर कृषि में जितने लोग लगे हुए हैं उन सभी को, उत्पादन-स्तर बनाये रखने के लिए, इस व्यवसाय में लगे रहना आवश्यक नहीं है। ऐसे व्यक्तियों की खेती में उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति का उत्पादन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, इसलिए इनके श्रम को अधिशेष-श्रम (Surplus Labour) कहा जाता है। इस श्रमाधिक्य की खेती में उपस्थिति साधनों की बर्बादी है। इसी अधिशेष श्रम को, जिसकी कृषि-क्षेत्र में सीमान्त उत्पादकता शून्य होती है, प्रच्छन्नह अथवा अदृश्य बेरोजगार माना जाता है।<sup>11</sup>

अल्पविकसित देशों के संदर्भ में लुइस का मत है कि प्रायः मजदूरी जीवन-निर्वाहके स्तर द्वारा निर्धारित होती है, इसलिए औद्योगिक-क्षेत्र में मजदूरों में रोजगार की सीमा उनकी सीमांत उत्पादकता और जीवन-निर्वाह के स्तर में समानता द्वारा निर्धारित होती है। स्पष्ट है कि अधिकतम लाभ अर्जित की इच्छा से कार्य करने वाला उद्योगपति ऐसे किसी भी मजदूर को काम पर नहीं लगाता है जिसकी उत्पादकता मजदूरी की दरसे कम है। अतः औद्योगिक-क्षेत्र में प्रच्छन्न बेरोजगारी की स्थिति लगभग नहीं पायी जाती। श्रमिक भी उद्योग में जीवन-निर्वाह स्तर से नीची मजदूरी पर काम करें के लिए तैयार नहीं होते। इसके विपरीत जब लोग पारिवारिक भूमि पर कार्य करते हैं तो परिवार के कार्यशील सदस्यों की संख्या में वृद्धि होने पर श्रम की सीमांत-उत्पादकता शून्य हो जाती है, क्योंकि खेती में उद्योगों की भाँति श्रम का प्रतिफल निर्धारित नहीं होता और परिवार के सभी लोग सामूहिक प्रयत्न द्वारा उत्पादन करते हैं, इसलिए इस समस्या पर कभी भी सीमान्त-उत्पादकता और प्रतिफल में समानता

की दृष्टि से विचार नहीं किया जाता। परिणाम स्वरूप लोगो को प्रच्छन्न - बेरोजगारी की स्थिति का सामना करना पड़ता है।

अधिकांश अर्थशास्त्रियों का मानना है कि भारतीय कृषि में व्यापक स्तर पर प्रच्छन्न बेरोजगारी विद्यमान है। परन्तु इसके बारे में सही तथ्य प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। 20 दिसम्बर, 1954 को देश के तत्कालीन वित्त मंत्री सी० डी० देशमुख ने लोकसभा में अपने एक वक्तव्य के दौरान कहा था कि कृषि में लगभग डेढ़ करोड़ लोग अतिरिक्त (Surplus) हैं। इस वक्तव्य का सांख्यिकीय या सैद्धान्तिक आधार क्या था? यह स्पष्ट नहीं था। परन्तु यदि इस तथ्य पर विश्वास किया जाय तो कहा जा सकता है कि छठे दशक के दौरान कृषि-जनसंख्या का लगभग 10 प्रतिशत प्रच्छन्नरूप से बेरोजगार था।

पिछले दो दशकों में कुछ अर्थशास्त्रियों ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि भारत के कृषि क्षेत्र में अतिरिक्त श्रम की अवधारणा निर्मूल है। अर्थात् कृषि में प्रच्छन्न बेरोजगारी नहीं है। इस विचारधारा की प्रथम अभिव्यक्ति टी० डब्ल्यू शुल्ट्ज के एक अध्ययन में मिलती है। 1918-9 के दौरान फैली इन्फ्लुएंजा महामारी का कृषि क्षेत्र पर प्रभाव जानने के लिए किये गये इस अध्ययन से शुल्ट्ज ने यह निष्कर्ष निकाला कि यदि कृषि कार्य से कुछ श्रम को अलग कर लिया जाय तो उत्पादन में निश्चित ही गिरावट आयेगी।<sup>12</sup> शुल्ट्ज के इस अध्ययन का आलोचनात्मक मूल्यांकन करते हुए यद्यपि ए० के० सेन ने यह सिद्ध किया कि शुल्ट्ज के निष्कर्षों को अधिक गंभीरता से नहीं लिया जा सकता।<sup>13</sup> फिर भी कुछ अर्थशास्त्री आज भी प्रच्छन्न बेरोजगारी के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते और यह मानते हैं कि भारतीय कृषि में श्रम की सीमान्त उत्पादकता शून्य से अधिक है।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य अर्थशास्त्री जैसे- जे० पी० भट्टाचार्य, अशोक रूद्र तथा शकुन्तला मेहरा ने प्रच्छन्न बेरोजगारी के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए इस सन्दर्भ में कुछ अनुमान भी लगाये हैं। उक्त अर्थशास्त्री अपने अध्ययन में इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सातवें दशक में भारत में कृषि कार्य, में लगी श्रम-शक्ति का 17.1 प्रतिशत अतिरिक्त श्रम के रूप में विद्यमान था। दूसरे शब्दों में,

---

कृषि-क्षेत्र में श्रम-शक्ति कालगभग छठा भाग प्रच्छन्नय-बेरोजगार था। उनके इस अध्ययन से यह भी पता लगताहै कि देश के कुछ राज्यों में प्रच्छन्नछ बेरोजगारी की स्थिति अन्य राज्यों की तुलना मेंकहीं अधिक गंभीर है। ये समस्त अध्ययन इस बात को स्पष्ट करते हैं कि देश केकषि-क्षेत्र में प्रच्छन्ने-बेरोजगारी अभी भी विद्यमान है ।<sup>14</sup>

## सन्दर्भ सूची

1. “भर्तिया अर्थव्यवस्था” , प्रतियोगिता दर्पण-जून,2001, पृष्ठ संख्या ,, ३३ ,34,35
2. कुमार, सोम रंजन , “लेबर एंड प्लानिंग” एडिटेड बाई राधा कमल मुखर्जी,एलाईड पब्लिसर्स प्राइवेट लिमिटेड, बाम्बे , 1964 पृष्ठ संख्या 124
3. सुन्दरम एवं दत्त , “भारतीय अर्थव्यवस्था” , संस्करण, पृष्ठ संख्या ,424.
4. मिश्र , एस0 के0 एवं पुरी वी0 के0 , “भारतीय अर्थव्यवस्था” , संस्करण 2001 , 124, 125
5. सिंह, एस0 के0 पी0 , “आर्थिक विकास एवं नियोजन” , संस्करण 2001 , पृष्ठ संख्या , 522 .
6. मिश्र , एस0 के0 एवं पुरी वी0 के0 , “भारतीय अर्थव्यवस्था” , संस्करण 2001 , 124, 125
7. तदैव , पृष्ठ संख्या , 125 , 126
8. एम० ब्लाग, पी० आर० जी० लेयर्ड एण्ड एम० वुडहाल, “द कालेज ऑफ ग्रेजुएटअनएम्प्लायमेण्ट इन इण्डिया” (लंदन, 969), पृष्ठ संख्या, 234.
9. तदैव-, पृष्ठ संख्या, 247.
- 10.मिश्र, एक० के० एवं पुरी, वी० के०, “भारतीय अर्थव्यवस्था”, संस्करण, 2001,पृष्ठ संख्या, 26.
- 11.गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया, प्लानिंग कमीशन, द फोर्थ प्लान; मिड टर्म आप्रेजूल, पृष्ठसंख्या, 47.
- 12.आर" नर्क्स, प्राब्लम्स ऑफ कैपिटल फार्मेशन इन अण्डरडेवलपड कन्ट्रीज (देहली,1973), पृष्ठ संख्या, 32.

13.शुल्तजू, टी० डब्ल्यू० ट्रॉसफामिंग ट्रेडिशनल एग्रीकल्चर (येल यूनीवर्सिटी प्रेस, 1964), पृष्ठ संख्या, 65-70.

14.सेन, ए० के०, "पीजेन्ट्स एण्ड ड्यूलिज्म विद ऑर विदाउट सरप्लस लेबर", इनचरन डी० वाधवा (ए० डी०), सम प्रॉब्लम्स ऑफ इण्डियाज इकोनोमिक्स पालिशी(नई दिल्ली, 1977), पृष्ठ संख्या 418.

15.भट्टाचारजी, जे० पी०, "अण्डर एम्प्लायमेण्ट एमंग इण्डियन फारमर्स", अर्थविजनाना, वॉल्यूम, 3, मार्च, 1961

एण्ड

रूद्र, अशोक, "डायरेक्ट इस्टीमेशन ऑफ सरप्लस लेबर इन एग्रीकल्चर" इकोनॉमिकएण्ड पोलिटिकल वीकली, वॉल्यूम, 8, एनूअल नम्बर, फरवरी, 1973.

एण्ड

मेहरा, शकुन्तला, "सरप्लस लेबर इन इण्डियन एग्रीकल्चर", इण्डियन इकोनामिकरिव्यू, अप्रैल, 1966, वॉल्यूम 1 (न्यू सीरीज) नं० 1, पृष्ठ संख्या 111-29.

\*\*\*\*\*